तव-सारो

(तप सार)

मंगल आशीर्वाद:

परम पूज्य सिद्धांत चक्रवर्ती राष्ट्रसंत
आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज

ग्रंथकार :

आचार्य वसुनंदी मुनि

जिनशासन नायक भगवान् महावीर स्वामी के 2550वें निर्वाण महोत्सव पर परम पूज्य राष्ट्र हितैषी संत, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा वी. नि. सं. 2550-2551 (सन् नव. 2023-नव. 2024) को **"अहिंसकाहार वर्ष"** के रूप में उद्घोषित किया गया। इसी **"अहिंसकाहार वर्ष"** के उपलक्ष्य में प्रकाशित

ग्रंथ : तव-सारो (तप सार)

मंगल आशीर्वाद : परम पूज्य सिद्धान्त चक्रवर्ती राष्ट्रसंत आचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी मुनिराज

ग्रंथकार : आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

सम्पादन : आर्यिका वर्धस्वनंदनी

संस्करण : प्रथम (सन् 2024)

प्रतियाँ : 1000

मूल्य : सदुपयोग

प्रकाशक : निर्ग्रन्थ ग्रंथ माला समिति (रजि.)

ISBN : **978-93-94199-65-1**

प्राप्ति स्थल : सी 117 बेसमेंट सैक्टर 51, नोएडा-201301
मो. 9971548889, 9867557668, 8800091252

मुद्रक : मित्तल इंडस्ट्रीज़, नई दिल्ली
मो. 9312401976

Visit us @ www.acharyavasunandi.com

सम्पादकीय

विरला जाणहिं तत्तु बुह, विरला णिसुणहिं तत्तु।
विरला झायहिं तत्तु जिय, विरला धारहिं तत्तु॥

—आचार्य योगिन्दु, योगसार, 66

विरले ही विद्वान् आत्मतत्त्व को जानते हैं। विरले ही श्रोता तत्त्व को सुनते हैं। विरले ही जीव तत्त्व को ध्याते हैं और विरले ही तत्त्व को धारण करके स्वानुभवी होते हैं।

आध्यात्मिक जगत् में अध्यात्मवेत्ताओं के द्वारा अन्वेषण करके तत्त्व के सूक्ष्म से सूक्ष्म तथ्य तक पहुँचा जाता है। वे स्वयं तत्त्वज्ञान को आत्मसात् कर भव्यजीवों के लिए देशना देते हैं। अपनी आत्मा को कर्मों से पृथक् कर उसे शुद्ध करने का पुरुषार्थ ज्ञानी-ध्यानी निर्ग्रन्थ दिगंबर श्रमण सदैव करते रहते हैं। आत्मा से कर्मों को नष्ट कर उसे शुद्ध करने की प्रक्रिया तप है। तपाने से अशुद्ध वस्तु शुद्ध होती है एवं शुद्ध होकर वह दीप्तिमान् हो जाती है। जिस प्रकार अग्नि में तपकर काष्ठ राख हो जाती है उसी प्रकार जीव के कर्म तप अनल में जलकर नष्ट हो जाते हैं।

''कर्मक्षयार्थं तप्यत इति तपः'' कर्मक्षय के लिए तपना तप है। जैसे तिलों में तेल, दधि ने घृत विद्यमान है उसी प्रकार मनुष्य की आत्मा में सर्वोच्च प्राप्तव्य वस्तु विद्यमान है। किन्तु जिस प्रकार तिलों को घानी में पेले बिना तेल एवं दधि को मथे बिना घृत प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार तप के बिना आत्मा की शुद्ध दशा की प्राप्ति संभव नहीं। जिस प्रकार वैश्वानर की निर्धूम लपटें किट्टकालिमा युक्त कलधौत को शुद्ध हाटक रूप प्रकट करती हैं इसी प्रकार तप की शुद्ध अनल में अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण करता हुआ भव्य बहिरात्मा स्वकीयदशा को शुद्ध सिद्ध परमात्मा रूप प्रकट करता है।

सूर्य तपकर संपूर्ण विश्वको प्रकाश वा ऊर्जा देता है, पृथ्वी तप से अन्नादि उत्पन्न कर प्राणी-जगत् का पालन करती है। कुछ विशेष संप्राप्ति हेतु तपना आवश्यक है। **''तपः शक्तिरहो परा''**[1] अर्थात् तप एक अद्‌भुत शक्ति है। जिस प्रकार दिवाकर का मुख्य उद्देश्य अंधकार का निर्मूलन और शीत बाधा का अपहरण होता है उसी प्रकार उभय तप का मुख्य उद्देश्य वासनाओं का उन्मूलन और कषायों का शमन होता है। तप करने से ही कर्मों की निर्जरा होती है। संयम रूप तप-साधना के बिना निःश्रेयस की कल्पना भी संभव नहीं। क्योंकि **''तपसा निर्जरा च''** -तपस्या निर्जरा का कारण है।

उत्तम मनुष्यजन्म पाकर, सप्त तत्त्व को जानकर, मन-सहित पंचेन्द्रियों का निरोध कर, निर्वेद (वैराग्य) अवस्था को धारण कर तथा समस्त संग का परित्याग कर वनगमनपूर्वक तपधर्म का पालन करना योग्य है। उत्तम तपोधर्म वहाँ है, जहाँ परिग्रहों का त्याग किया गया है, जहाँ कामदेव का दर्प खण्डन किया गया है, जहाँ नग्नत्व (दिगंबर मुनिराजों) का दर्शन होता है। तपोधर्म गिरि-कन्दराओं में निवास करने का परामर्श देता है, उसमें उपसर्गों को सहन करने की क्षमता है। तपोधर्म रागादि का विजेता है।[2] तप से ही स्व-पर का बोध होता है, भेदविज्ञान होता है, कर्मों का क्षय होता है, केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है तथा शाश्वत-सुख नित्य सम्पद्यमान हो जाता है। संयम युक्त उर्वरा तपोभूमि पर भव सुख के अनुपम पुष्प विकसित होते हैं, वहीं सिद्धत्व के अनुपम अनिवार्य फल प्राप्त होते हैं।

बारह-विहु तउ तरु दुग्गइ-परिहरु ते पूजिज्जइ थिरमणिणा।
मच्छरु मउ छंडिवि करणइं दंडिवि तं पि धरिज्जइ गउरविणा।।

बारह प्रकार का यह श्रेष्ठ तपधर्म, जो दुर्गति का परिहारक है, उसे स्थिरमन वाला होकर पूजना चाहिए। मद एवं मात्सर्य का भाव छोड़कर, इंद्रियों का दमन कर इसे धारण करना चाहिए।

1. आदिपुराण, 18/25
2. महाकवि रइधू

प्रस्तुत **"तव-सारो"** नामक प्राकृत ग्रंथ परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा रचित है, जो 111 गाथाओं में निबद्ध है। ग्रंथ का नाम ही ग्रंथ की विषयवस्तु का प्रस्तोता है। इस ग्रंथ में आचार्य भगवन् ने तप की आवश्यकता, महत्ता, स्वरूप व भेदादि का सुंदर वर्णन किया है। दृष्टांत देकर तत्त्व को पुष्ट करने का आचार्य गुरुवर का कौशल बहुत अद्‌भुत है। आचार्य भगवन् की देशना वा उपदेश वचन निर्गत हो वा शब्दानुबद्ध किन्तु उसमें उदाहरण व दृष्टांत देकर भव्यजीवों के हृदयंगम कराने की कला अनुपम है। उदाहरण स्वरूप इस ग्रंथ की एक गाथा यहाँ उल्लिखित है–

अप्पा - जलबिंदूदो, तवक्ककरे णिस्सरिदे हवंतो।
जिणत्त-सक्कधणूव्व दु, लोगत्तये सोहदि अप्पा॥17॥

जिस प्रकार जल की बूंदों से सूर्य की किरणों के निकलने पर आकाश में इंद्रधनुष शोभायमान होता है उसी प्रकार आत्मा रूपी जलबिंदुओं से तप रूपी सूर्य की किरणों के निकलने पर वह जिनत्व रूप इंद्रधनुष तीनों लोकों में सुशोभित होता है।

परम पूज्य आचार्य भगवन् अविच्छिन्न रूप से श्रुत पठन-पाठन व लेखन में निमग्न रहते हैं। उनकी श्रुत आराधना का फल श्रुत रूप में प्राप्त होना हम सभी के सौभाग्य व श्रेष्ठ पुण्य को दर्शाता है। इन ग्रंथों से मात्र हम ही नहीं अपितु भविष्य में युगों युगों तक भव्यजीव लाभान्वित होंगे। ये ग्रंथ संसार से पार कराने के लिए नाव के समान ही है।

परंपरागत रूप से प्राप्त हुए जिनेन्द्र प्रभु के उपदेश आत्मा को स्नापित करने हेतु निर्मल निर्झर के समान हैं। जिन ग्रंथों का अध्ययन कर पाठक के परिणाम उत्कृष्ट व विशुद्ध हो जाते हैं तो उन ग्रंथकर्ताओं के परिणामों की धवलता कैसी होगी? कई बार

पूज्य गुरुदेव के संबोधन का श्रवण कर ऐसी अनुभूति होती है जैसे किन्हीं केवली के पादमूल में बैठकर आत्मतत्त्व का उपदेश सुन रहे हों।

विश्व के समस्त प्राणियों के प्रति उनकी वात्सल्य से अनुस्यूत कल्याण की भावना उनमें साक्षात् भावी तीर्थंकर के स्वरूप का दिग्दर्शन कराती है। जिस प्रकार आचार्य भगवन् श्री वीरसेन स्वामी के निःसीम ज्ञान को देखकर भव्यजनों ने 'कलिकाल सर्वज्ञ' कहकर उनकी स्तुति की, उसी प्रकार भक्ति से ओतप्रोत हमारे शब्द 'श्रुतकेवली' के रूप में आपकी अभिवंदना करते हैं।

अध्ययन-अध्यापन के ये संस्कार हमने भी पूज्य आचार्य भगवन् से ही प्राप्त किए हैं। हे गुरुदेव ! मोक्षपर्यन्त आपके ये निर्मल विशुद्ध परिणाम हम निराबाध प्राप्त करते रहें। आपके निर्दोष पथ का अनुगमन करते हुए हम शीघ्र संयम के परम शाश्वत फल को प्राप्त करें।

प्रस्तुत ग्रंथ **'तव-सारो'** अर्थात् तपसार के संपादन में कोई त्रुटि रह गयी हो तो विज्ञजन संशोधित कर पढ़े, हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से ग्रंथाध्ययन करें। जन जन के श्रद्धापुंज परमपूज्य राष्ट्रहितैषी संत अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी महाराज का संयम, तप, ज्ञान व साधना का सौरभ सहस्रों वर्षों तक विश्व को सुरभित करता रहे। गुरुवर श्री को आरोग्य लाभ हो एवं अपने लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त करें। परमपूज्य गुरुवर श्री के चरणों में सिद्ध-श्रुत-आचार्यभक्ति सहित कोटिशः नमोस्तु! नमोस्तु! नमोस्तु!.....

''जैनम् जयतु शासनम्''

ॐ अर्हं नमः

आर्यिका वर्धस्वनंदनी

श्री शुभमिति फाल्गुन कृष्ण द्वादशी
श्री वीर निर्वाण संवत् 2550
गुरुवार 7.3.2024
अतिशय क्षेत्र तिजारा जी. (राज.)

तप का स्वरूप वर्णित करने वाली प्रथम प्राकृत कृति : तव सारो

डॉ. शैलेश कुमार जैन
उपमंत्री
अ.भा.दि.जैन विद्वत्परिषद्
मो. 7014029330
Email Id : jain-shailesh1983@gmail.com

तीन शब्द हैं–दुर्लभ, महादुर्लभ और अतिमहादुर्लभ। छहढाला की पहली ढाल में आता है 'दुर्लभ लहि ज्यों चिंतामणि' दशलक्षण धर्म की पूजन में आता है 'धारा मनुस तन महादुर्लभ' एवं 'अतिमहादुर्लभ त्याग विषय कषाय जो तप आदरैं' अर्थात् त्रस पर्याय की प्राप्ति दुर्लभ है, उसमें भी मनुष्य पर्याय की प्राप्ति महादुर्लभ है तथा मनुष्य पर्याय में भी विषय-कषायों के त्याग पूर्वक तप को अंगीकार करना अतिमहादुर्लभ है। ऐसे महादुर्लभ तप को ही प्रस्तुत कृति में विषय बनाया गया है।

कृति की प्रामाणिकता के लिए कृतिकार का प्रामाणिक होना अनिवार्य है। न्याय की व्यवस्था भी यही है–'वक्तुः प्रामाण्यात् वचनप्रामाण्यम्'। शास्त्र-स्वाध्याय का प्रचलित मंगलाचरण भी इसी पद्धति पर आधारित है, जिसमें पहले ग्रन्थ के मूल कर्ता से लेकर परंपरा-कर्ता तक का स्मरण किया जाता है तदुपरांत ये कहा जाता है कि उन सर्वज्ञ देवादि के वचनों के अनुसार सम्प्रति अमुक आचार्य महाराज ने इस कृति का प्रणयन किया है।

प्रस्तुत कृति के रचयिता अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी प.पू. आचार्य श्री वसुनंदी जी महाराज की कोई कृति उठा लीजिए, वे पद-पद पर

पूर्वाचार्यों का अनुसरण करते हुए ही पाये जाते हैं। इस कृति की भी सभी गाथाएँ पूर्वाचार्यों की वाणी का ही वर्धन करने वाली हैं, शब्द तो कालानुसार बदलते ही रहते हैं लेकिन भाव वही हैं, भावार्थ वही है और सार भी वही है। शब्दों की अपेक्षा ये एक ग्रन्थ है, पर भावों की या साधना की अपेक्षा देखा जाये तो एक श्रेष्ठ आचार्य के जीवन का तपाचार टंकित हो गया है। इस प्रकार की रचना का सबसे बड़ा लाभ तो स्वयं सच्चे साधक को ही पहले होता है। साधक सिर्फ लिखता ही नहीं है, वह जितना लिखता है, उससे ज्यादा स्वयं को लखता है। देश भर के विद्वान् इस बात के प्रत्यक्ष साक्षी हैं कि पूज्य आचार्य श्री वसुनंदी महाराज ग्रन्थ लेखन के बाद उसकी वाचना संघस्थ साधुवृंदों, आर्यिकाओं, त्यागी-व्रतियों और विद्वानों के बीच करते हैं, यदि संशोधन अपेक्षित होता है तो संशोधन करते हैं, उसके बाद ही वे अपनी तरफ से उसी कृति को समाज को ये कहकर सौंप देते हैं कि मैंने अपने स्वयं के कर्मों के क्षय के निमित्त, परमानंद के प्रकटीकरण के लिए इस ग्रन्थ को पूर्ण किया है। आचार्य परमेष्ठी का यही तो लक्षण है-

दंसण-णाणपहाणे, वीरिय-चारित्तवर-तवायारे।
अप्पं परं च झुंझइ, सो आयरियो मुणी झेओ॥

अर्थात् जो मुनि, दर्शन और ज्ञान की प्रधानता सहित वीर्य, चारित्र व श्रेष्ठ तपाचार में अपने को व दूसरों को लगाते हैं, वे आचार्य परमेष्ठी ध्यान करने योग्य हैं। वस्तुतः धर्ममय जीवन व धर्म में ही आनन्द के नाम को सार्थक करने वाले परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी महाराज को देखकर लगता है-

दिन-रात आत्मा का चिंतन मृदु-संभाषण में वही कथन।
निर्वस्त्र दिगम्बर काया से प्रकट हो रहा तव अंतर्मन॥

पूज्य श्री द्वारा 'गागर में सागर' भरने वाली उक्ति को चरितार्थ

करने वाली 111 गाथाओं में निबद्ध यह **'तव-सारो'** ऐसी प्रथम प्राकृत कृति है, जिसमें तप का स्वरूप, भेद और माहात्म्य का वर्णन आगमानुगामी होने के साथ-साथ वर्तमान के तपस्वियों और इच्छुकों के लिए सत्प्रेरक व अभीष्ट सिद्धि-दायक है। इस ग्रन्थ की अद्भुत विशेषता यह है कि इसमें प्राय: सभी गाथाओं में सोदाहरण वर्णन किया गया है, जो पाठक को सैद्धान्तिक सुगमता का साधक बनता है। कुन्दकुन्द भगवान् जैसे आचार्यों का अनुकरण करते हुए आचार्य श्री वसुनंदी जी महाराज ने अलौकिक उपलब्धि के लिए लौकिक दृष्टांतों का शानदार प्रयोग किया है। वैयावृत्ति की महिमा बताने वाला गाथा क्र. 89 का दृष्टांत प्रस्तुत है-

सिसूण मादु-पयं व, महच्चं सिप्पीइ सादि-बिंदू वा।
बीआण वर-भूमीव, वेज्जावच्च-मुहय-धम्माण॥

अर्थात् श्रमण व श्रावक दोनों धर्मों के लिए वैयावृत्ति वैसे ही महत्वपूर्ण है, जैसे शिशुओं के लिए माँ का दुग्ध, सीप के लिए स्वाती की बूँद, और बीजों के लिए उत्तम भूमि महत्वपूर्ण होती है।

दिगम्बर साधु के जीवन में तप इतना महत्वपूर्ण है कि आचार्य समन्तभद्र स्वामी जैसे तार्किक आचार्य रत्नकरण्डक श्रावकाचार में गुरु को तपोभृत व तपस्वी ('तपोभृतां' व 'तपस्वी स प्रशस्यते') कहते हैं।

हम सब सौभाग्यशाली हैं कि अमृत के जैसे वचनों से सिञ्चित करने वाले, अपने अद्भुत क्षयोपशम से जैन साहित्य को वृद्धिंगत करने वाले एक आदर्श आचार्य के रूप में आपका चरण सान्निध्य हमें मिलता है। 'तव-सारो' को यदि संस्कृत में पढ़ा जाये तो इसका अर्थ आपका सार भी हो सकता है, आपका अर्थात् पूज्य श्री के जीवन का सार। जो आपने जीवन में तप के बारे में अनुभव किया, उसे पूर्वाचार्यों की कसौटी पर कसते हुए शब्दों में गूँथ दिया।

ये भी सोने पे सुहागा जैसी बात है कि आपकी पुण्य मेधा से प्रसूत साहित्य को परिष्कृत व व्यवस्थित करने के लिए आपकी ही सुयोग्य शिष्या वात्सल्यमूर्ति आर्यिका वर्धस्व नंदनी माता जी हैं, जो अपने सातिशय क्षयोपशम से दर्शन, न्याय, साहित्य, आचार, पुराण, इतिहास आदि सभी प्रकार के ग्रन्थों का संपादन कर देती हैं। विद्वज्जगत् आपकी गुरु-भक्ति, प्रतिभा, विनय व वात्सल्य देखकर अभिभूत है। ऐसी पूज्य आर्यिका माता जी को सादर सविनय वंदामि। संघ के प्रत्येक साधु, आर्यिका, त्यागी-व्रती की अपनी-अपनी महत्वपूर्ण भूमिका है, उन सबके प्रति मैं त्रियोग शुद्धि पूर्वक यथायोग्य वंदना करता हूँ। इस कृति के रचयिता तपोभृताचार्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी श्री वसुनंदी जी महाराज के चरणों में बारंबार नमोऽस्तु!!!

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	विषय	गाथा सं.	पृ. सं.
1.	मंगलाचरण	1-4	1
2.	ग्रंथ कथन प्रतिज्ञा	5	1
3.	आत्मशुद्धि के हेतु	6	2
4.	सद्ध्यान	7	2
5.	संयम भवन के अंग	8-10	2
6.	ग्रंथकार रुचि	11	3
7.	सम्यक् तप माहात्म्य	12	3
8.	गुणसंवर्द्धक तप	13-14	3
9.	योगी की संतुष्टि	15	4
10.	तप से आत्मा की शोभा	16-17	4
11.	तप से आत्मा निर्मल	18	5
12.	आत्मा का पोषक-तप	19	5
13.	आत्मवर्द्धक-तप	20	5
14.	शांत व ओजस्वी तपस्वी	21	5
15.	तप से आत्मशुद्धि	22	6
16.	तप भेद	23	6
17.	बाह्य तप स्वरूप व भेद	24-25	6
18.	बाह्य तप का प्रभाव	26-27	7
19.	आकांक्षा युक्त तप निष्फल	28-29	7

क्र. सं.	विषय	गाथा सं.	पृ. सं.
20.	बाह्यतप बिना अंतरंगतप शक्य नहीं	30	7
21.	उपवास तप	31	8
22.	उपवास के भेद	32-33	8
23.	नियम उपवास के पर्यायवाची	34	8
24.	यम रूप उपवास के पर्यायवाची	35	9
25.	उपवास के अन्य भेद	36	9
26.	सहेतुक व अहेतुक उपवास	37	9
27.	जप, सूत्रपाठादि उपवास नहीं	38	9
28.	तीर्थवंदनादि उपवास नहीं	39	10
29.	उपवास का फल	40	10
30.	पर्वों में उपवास फल	41-42	10
31.	उपवास काल	43	10
32.	अनशन तप में प्रसिद्ध	44	11
33.	ऊनोदर तप	45	11
34.	अनोदरतप भेद व स्वरूप	46-47	11
35.	ऊनोदरतप फल	48	12
36.	ऊनोदरतप में प्रसिद्ध	49-50	12
37.	जगपूज्य तपस्वी	51	12
38.	वृत्तिपरिसंख्यान तप	52	13
39.	द्रव्यापेक्षया वृत्ति	53	13

क्र. सं.	विषय	गाथा सं.	पृ.सं.
40.	क्षेत्रापेक्षया वृत्ति	54	13
41.	कालापेक्षया वृत्ति	55	14
42.	वृत्तिपरिसंख्यान व्रत में प्रसिद्ध	56	14
43.	रस परित्याग व्रत	57-58	14
44.	रसत्याग तप से इंद्रियजय	59	15
45.	रसत्याग से शुद्धात्मरस की प्राप्ति	60	15
46.	विविक्त-शैय्यासन तप	61	15
47.	आसन भेद	62	15
48.	आसन-विजय	63	16
49.	कायक्लेश तप	64	16
50.	कायक्लेश तप में प्रसिद्ध	65-66	16
51.	अंतरंग तप व भेद	67-68	17
52.	कषाय शमनकारक अंतरंग तप	69	17
53.	शुभध्यानादि का आधार-अंतरंग तप	70	17
54.	प्रायश्चित्त तप व भेद	71-74	17
55.	दोष त्याग प्रायश्चित्त पालन	75-76	18
56.	प्रायश्चित्त से चित्त शुद्धि	77-79	19
57.	विनय तप	80	19
58.	विनय माहात्म्य	81-82	19
59.	विनय के भेद	83	20

क्र. सं	विषय	गाथा सं.	पृ. सं.
60.	वैय्यावृत्ति तप	84	20
61.	भावी तीर्थंकर कौन?	85-86	20
62.	जिनशासन स्तंभ-वैय्यावृत्ति	87	21
63.	वैय्यावृत्ति कैसे?	88	21
64.	वैय्यावृत्ति की महत्ता	89-91	21
65.	वैय्यावृत्ति फल	92-93	22
66.	वैय्यावृत्ति न करने से हानि	94	22
67.	स्वाध्याय तप	95	22
68.	वाचना	96	23
69.	पृच्छना	97	23
70.	अनुप्रेक्षा	98-99	23
71.	आम्नाय	100	23
72.	धर्मोपदेश	101	24
73.	कायोत्सर्ग तप	102	24
74.	कायोत्सर्ग के भेद	103	24
75.	ध्यान का बीज-कायोत्सर्ग	104	24
76.	ध्यान तप	105-106	25
77.	अंतरंग तप में प्रसिद्ध	107	25
78.	ग्रंथपठन-फल	108	25
79.	अंतिम मंगलाचरण	109	26
80.	प्रशस्ति	110-111	26

आचार्य वसुनंदी मुनिराज कृत

तव-सारो

(तप सार)

मंगलाचरण

सिद्धाणं सुद्धाणं, अरिहाण गद-राय-दोस-मोहाण।
रयणत्तय-जुत्ताणं, णमो सय णिग्गंथ-साहूण॥1॥

शुद्ध-सिद्ध भगवंतों, रागद्वेष वा मोह से रहित अरिहंतों एवं रत्नत्रय से युक्त निर्ग्रन्थ साधुओं को सदा नमस्कार हो।

बारसंग-जिणवाणिं, सव्वजीवहिदयरं च जिणधम्मं।
णमंसामि जिणतित्थं, जिणचेइय-चेइयालयाणि॥2॥

द्वादशांग जिनवाणी माँ, सर्व जीवों का हित करने वाले जिनधर्म, जिनतीर्थ, जिनचैत्य व जिनचैत्यालयों को मैं नमस्कार करता हूँ।

थुवमि चरियचक्किं-संतिसिंधुं महातवसि-पायसिंधुं।
सिरिजयकित्तिं भारदगोरव - देसभूसण - सूरिं॥3॥

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी मुनिराज, महातपस्वी आचार्य श्री पायसागर जी मुनिराज, अध्यात्मयोगी आचार्य श्री जयकीर्ति जी मुनिराज एवं भारत गौरव आचार्य श्री देशभूषण जी मुनिराज की मैं स्तुति करता हूँ।

सिदपिच्छिधारगं मे, पच्चक्ख-परमुवयारि-माइरियं।
खवगराय-सिरोमणिं, विज्जाणंद-गुरुं पणमामि॥4॥

मेरे प्रत्यक्ष परम उपकारी, श्वेतपिच्छि-धारक, क्षपकराज शिरोमणि आचार्य श्री विद्यानंद जी गुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ।

ग्रंथ कथन प्रतिज्ञा

कम्मक्खयस्स परमाणंद-पगासणाए कित्तिस्सामि।
तवसारं जो कंखं, णिरुंभिदुं सुतवो पाणोव्व॥5॥

कर्मक्षय व परमानंद के प्रकटीकरण के लिए मैं उस 'तपसार' को कहूँगा जो सम्यक् तप, इच्छाओं के निरोध के लिए प्राण के समान है।

आत्मशुद्धि के हेतु

सगप्पसुद्धीए खलु, सद्दंसण-णाण-विराय-चरियाणि।
तवो झाणं च पहाण-हेदू कम्मणिज्जराए दु॥6॥

अपनी आत्मा की शुद्धि व कर्म-निर्जरा के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र, वैराग्य, तप व ध्यान प्रधान कारण हैं।

सद्ध्यान

सज्झाणं तव-अंगं, तं विणा णेव खयंति कम्माइं।
पमत्तादु पहुडि तवो, अजोगंतं दु मुणेदव्वो॥7॥

सद्ध्यान, तप का अंग है। उसके बिना कर्मों का क्षय नहीं हो सकता। प्रमत्त गुणस्थान से अयोगकेवली गुणस्थान तक तप जानना चाहिए।

संयम भवन के अंग

संजम-भवणस्स तस्स, तस्स अवि आहारोव्व सम्मत्तं।
कसाय-मंदत्तं चिय, सण्णाणं दु तस्स थंभोव्व॥8॥

सम्यक्त्व उस संयम रूपी भवन की नींव के समान है और उस सम्यक्त्व का भी आधार कषायों की मंदता है। सम्यग्ज्ञान उस संयम रूपी भवन के स्तंभ के समान है।

वेरग्गं भित्तीव दु, संजम-भवण-सिहरं दु सम्मतवो।
धया-कलसोव्व सय बे-सुहझाणाइं तवसिहरम्मि॥9॥

संयम भवन का शिखर सम्यक् तप है। वैराग्य उसकी दीवार के समान है। दो शुभ ध्यान (धर्म व शुक्लध्यान) उस तप रूपी शिखर पर ध्वजा और कलश के समान हैं।

सच्चरियं छायणं व, संजुत्तं इंद्रियदमण-समिदीहि।
धम्मथिरिमाए सेस-गुणा आवसिया वि जाणेज्ज॥10॥

इंद्रियदमन व समिति से युक्त सम्यक् चारित्र संयम रूपी भवन की छत के समान है। धर्म की स्थिरता के लिए शेष सात गुण व आवश्यक भी जानने चाहिए।

ग्रंथकार रुचि

मम चित्तं अणुरंजदि, तवे सज्झाए सया सज्झाणे।
अप्पसंतीए कुणमि, सुदकिड्डं विसुद्धीए हं॥11॥

तप, स्वाध्याय और सद्ध्यान में नित्य ही मेरा चित्त अनुरक्त होता है। आत्मशांति के लिए मैं विशुद्धिपूर्वक श्रुतक्रीड़ा करता हूँ।

सम्यक् तप माहात्म्य

उदर-रोय-हरणत्थं, उण्हजल-तक्क-दक्खाइ-समत्था।
जह काम-कसाय-मोह-इस्सादिं तह तवो खयिदुं॥12॥

जिस प्रकार गर्म जल, छाछ, मुनक्का आदि उदर रोग को दूर करने में समर्थ होते हैं उसी प्रकार सम्यक् तप काम, कषाय, मोह व ईर्ष्यादि को नष्ट करने में समर्थ होता है।

गुणसंवर्द्धक तप

जलसिंचणेण रुक्खो, वड्ढेदि चंदवड्ढणेण सिंधू।
उहयतववड्ढणेणं, जह तह सया सुद्धप्पगुणा॥13॥

जिस प्रकार जलसिंचन से वृक्ष व चंद्रवृद्धि से सागर का जल वृद्धि को प्राप्त होता है उसी प्रकार अंतरंग और बहिरंग दोनों तपों के वर्द्धन से शुद्धात्मा के गुण भी सदैव वृद्धिगत होते हैं।

सुक्कवणं पज्जलिदुं फुलिंगेगो अवि समत्थो जह तह।
उववासादी तवा दु, कामवियार-मालुंखेदुं॥14॥

जिस प्रकार सूखे वन को जलाने के लिए अग्नि का एक कण वा एक चिंगारी भी समर्थ होती है उसी प्रकार काम विकार को नष्ट करने के लिए उपवासादि तप समर्थ है।

योगी की संतुष्टि

मेह-वरिसाइ तिप्पदि, वसुहा णिद्धणो जहेच्छ-धणेणं।
जह मादुवच्छलेणं, बालो तह सुतवेण जोगी॥15॥

जिस प्रकार बादलों के बरसने से पृथ्वी, यथेच्छ धन प्राप्त कर निर्धन और माता के वात्सल्य से बालक संतुष्ट होता है उसी प्रकार सम्यक् तप से योगी संतुष्ट होता है।

तप से आत्मा की शोभा

अक्ककरसंजोगेण, णीरबिंदू भासेदि मोत्तिअं व।
उहयतवसंजोगेण, अप्पा सोहदि परमप्पा व्व॥16॥

जिस प्रकार सूर्य की किरण के संयोग से जल की बूंद मोती के समान प्रतिभासित होती है उसी प्रकार अंतरंग व बाह्य तप के संयोग से आत्मा परमात्मा के समान शोभायमान होती है।

अप्पा-जलबिंदूदो, तवक्ककरे णिस्सरिदे हवंतो।
जिणत्त-सक्कधणू व्व दु, लोगत्तये सोहदि अप्पा॥17॥

जिस प्रकार जल की बूंदों से सूर्य की किरणों के निकलने पर आकाश में इंद्रधनुष शोभायमान होता है उसी प्रकार आत्मा रूपी जलबिंदुओं से तप रूपी सूर्य की किरणों के निकलने पर वह आत्मा जिनत्व रूपी इंद्रधनुष के समान अर्थात् जिनेंद्र प्रभु के समान होती हुई तीनों लोकों में शोभा को प्राप्त होती है।

तप से आत्मा निर्मल

किण्हवण्णि-इंगालं, धवलं खडिआ व्व संदुमिय अणले।
जह तह तव-अग्गिम्मि हु, सिवोव्व अप्पादिसय-अमलो॥18॥

जिस प्रकार अग्नि में जलकर काला कोयला खड़िया के समान सफेद हो जाता है उसी प्रकार तप की अग्नि में तपकर आत्मा, अतिशय सिद्धों के समान निर्मल हो जाती है।

आत्मा का पोषक-तप

अण्णजल-फल-खीरादि-दिव्वामियत्थेहि पोसदि देहो।
णिम्मल-उहय-तवेहिं, जह तह सया पोसदि अप्पा॥19॥

जिस प्रकार अन्न-जल-फल-दुग्धादि दिव्य अमृत पदार्थों से देह का पोषण होता है उसी प्रकार निर्मल उभय (बाह्य व अंतरंग) तप से आत्मा संपोषित होती है।

आत्मवर्द्धक-तप

उव्वरग-वाउमादिं, लहिय उत्तम-मट्टिआ-जुद-महीइ।
रुक्ख-अदिसयविड्ढीव, विविहतवेहिं अप्पतरू वि॥20॥

जिस प्रकार उत्तम मिट्टी से युक्त पृथ्वी पर खाद, वायु आदि को प्राप्तकर वृक्ष अत्यंत वृद्धि को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार विविध तपों से आत्मा रूपी वृक्ष भी संवर्धित होता है।

शांत व ओजस्वी तपस्वी

अक्क-सीयलो मूले, जह तह उण्ह-दित्ति-जुद-करा तस्स।
तवसीण संत-चित्तं, वरं तेजोज-कंतिवंतो॥21॥

जिस प्रकार सूर्य मूल में शीतल और उसकी किरणें ऊष्ण दीप्ति से युक्त होती हैं उसी प्रकार तपस्वियों का चित्त शांत होता है किन्तु वे बाहर से तेजस्वी, ओजस्वी और कांतिवान् होते हैं।

तप से आत्मशुद्धि

कणग-पहाणो सुज्झदि, अणलेणं जह परमकणगरूवो।
तह तवग्गिणा अप्पा, होदि सिद्धोव्व परमसुद्धो॥22॥

जिस प्रकार कनक पाषाण अग्नि से परम कनक (स्वर्ण) रूप शुद्ध होता है उसी प्रकार तप की अग्नि से आत्मा, सिद्धों के समान परम शुद्ध होती है।

तप भेद

बेविहो तवो णेयो, समये हिदत्थं भव्वजीवाणं।
बहिरब्भंतर-तवो य, कारणं दु अप्पसुद्धीए॥23॥

जिनशासन में भव्य जीवों के हित के लिए दो प्रकार के तप जानने चाहिए। वह बाह्य व अभ्यंतर तप आत्मशुद्धि का कारण हैं।

बाह्यतप स्वरूप व भेद

बहिदिट्ठीए दिट्ठं, मिच्छादिट्ठी जं कुणिदुं सक्का।
सो बहितवो हिदत्थं, उववासादी दु छव्विहा य॥24॥

जो बाह्य दृष्टि से देखा जा सकता है, जो मिथ्यादृष्टि भी करने में समर्थ है वह बाह्यतप सबके हित के लिए उपवास आदि छः प्रकार का कहा गया है।

उववास-अवमोदरिय-वित्तिपरिसंखाण-रसचाग-तवा।
विवित्त-सेज्जासणं च, कायकिलेसो दु बहिर-तवा॥25॥

उपवास, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसत्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश, ये छः बाह्य तप हैं।

बाह्यतप का प्रभाव

बज्झ-तवेहिं देहो, रोयविमुक्को य सत्तिसंपण्णो।
सवरहिद णिमित्तं जिणसासणपहावणाए तहा॥26॥

छः बाह्य तपों से देह रोगों से मुक्त व शक्ति से युक्त होती है। ये बाह्यतप जिनशासन की प्रभावना और स्वपर हित का निमित्त हैं।

बहिरतवेण झिज्जेदि, भोयणासत्ती वियार-भावा य।
भोयविरत्ती वड्ढदि, अंतरंगतवाहारो सो॥27॥

बाह्य तप से भोजन में आसक्ति और विकारी भाव क्षीणता को प्राप्त होते हैं, भोगों से विरक्ति वृद्धि को प्राप्त होती है। वह बाह्य तप, अंतरंग तप का आधार है।

आकांक्षा युक्त तप निष्फल

संकिलेसभावजुदो, कुणदि बहितवं खयदि तस्स देहो।
जसं पदिट्ठं कंखदि, वड्ढंते विआरि-भावा य॥28॥

संक्लेश भावों से युक्त जो जीव बाह्य तप करता है उसकी देह ही नष्ट होती है और जो (तप से) यश व प्रतिष्ठा की आकांक्षा करता है उसके विकारी भाव वृद्धिंगत होते हैं।

सयलकम्मं खयेदुं, संवर-णिज्जराण बहि-तवं कुणदि।
सुद्धप्प-भावणाए, वड्ढदि असंखगुण-विसुद्धी॥29॥

जो संवर, निर्जरा व सकल-कर्मों के क्षय के लिए शुद्धात्मा की भावना से बाह्य तप करता है उसकी विशुद्धि असंख्यातगुणी वृद्धि को प्राप्त करती है।

बाह्यतप बिना अंतरंगतप शक्य नहीं

बहिकवाडुग्घाडणं, विणा अंतरकवाडुग्घाडणं दु।
जह तह असक्क-मंतर-तव-असक्कं बज्झ-मुविक्खिय॥30॥

जिस प्रकार बाहर के द्वारों को खोले बिना अंदर के द्वारों को खोलना अशक्य है उसी प्रकार बाह्य तप की उपेक्षा करके अंतरंग तप भी अशक्य है।

उपवास तप

चदुविह-आहारस्स दु, खज्ज-सज्ज-लेह-पेयाण णेयो।
कसायजुदपरिचागो, विसयणिवत्तिरूवुववासो॥31॥

खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय, इन चार प्रकार के आहार का कषाय के साथ त्याग करना विषयों से निवृत्ति रूप उपवास जानना चाहिए।

उपवास के भेद

सो उववासो दुविहो, जम-णियम-रूवं कुव्वंति साहू।
सल्लेहणाइ समये, सिवकंखी उहयरूवेणं॥32॥

वह उपवास दो प्रकार का है। साधु उसे यम रूप वा नियम रूप करते हैं। सल्लेखना के समय मोक्ष के आकांक्षी दोनों ही रूप से उपवास करते हैं।

कालमज्जादा-सहिद-उववासो णियमरूव-अणसणं च।
मरण-पज्जंताहार-चागो जमरूवाणसणं दु॥33॥

काल की मर्यादा से सहित उपवास नियम रूप अनशन या उपवास है और मरण-पर्यन्त आहार का त्याग यम रूप अनशन या उपवास है।

नियम उपवास के पर्यायवाची

साकंखं इतिरियं च अद्धाणसण-मवधिदयालणसणं।
णियमरूवाणसणं च, एगट्ठं सय मुणेदव्वं॥34॥

साकांक्ष, इतिरिय, अर्द्धानशन, अवधृतकाल अनशन और नियम रूप अनशन, ये सदैव एकार्थवाची जानने चाहिए।

यम रूप उपवास के पर्यायवाची

णिरवकंखं च जावज्जीवं सव्वाणसणं जमरूवं।
एगट्ठं णादव्वं, अणवधिदयालं अणसणं च॥35॥

निरवकांक्ष, यावज्जीवन, सवनिशन, यमरूप अनशन और अनवधृतकाल अनशन, ये सभी एकार्थवाची जानने चाहिए।

उपवास के अन्य भेद

भासिदं गणहरेहिं, दुविह-मणसणं अण्णपयारेणं।
सहेदुगं अहेदुगं, कारणं कम्मणिज्जराए॥36॥

गणधरों के द्वारा अन्य प्रकार से भी दो प्रकार के अनशन (उपवास) कहे गए हैं। वे सहेतुक व अहेतुक उपवास कर्म निर्जरा का कारण हैं।

सहेतुक व अहेतुक उपवास

केणं वि णिमित्तेण, जं अणसणं करिज्जेदि धम्मीहि।
तं सहेदुग-अणसणं, अहेदुग-मणसणं इदरं च॥37॥

धर्मियों के द्वारा किसी भी निमित्त से जो उपवास किया जाता है वह सहेतुक उपवास एवं इसके इतर अहेतुक उपवास कहलाता है।

जप, सूत्रपाठादि उपवास नहीं

महामंतजवफलं च, सुत्तपाढफलं भासिदं कयाइ।
अणसणतवफलं व चिय, किण्णु णेव अणसण-तवो ते॥38॥

महामंत्र के जप का फल, सूत्रपाठ का फल कदाचित् उपवास के समान कहा गया है किन्तु वे उपवास या अनशन तप नहीं हैं।

तीर्थवंदनादि उपवास नहीं

तित्थवंदणाए गुरु-सेवाए जिणदंसणेण लहदि वि।
उववासोव्व फलं चिय, भवी वरं ण ते उववासो॥39॥

भव्य जीव तीर्थवंदना, गुरुसेवा व जिनदर्शन से भी उपवास के समान फल प्राप्त करता है; किन्तु वे उपवास नहीं हैं।

उपवास का फल

अणसणेण जसकित्ती, बुद्धि-विगासो आरोग्ग-वड्ढणं।
पुण्ण-लाहो वदीणं, चित्तविसुद्धो अप्पसंती॥40॥

उपवास से व्रतियों के यशकीर्ति, बुद्धि का विकास, आरोग्य का वर्द्धन, पुण्य का लाभ व चित्त-विशुद्ध होता है और आत्मशांति की प्राप्ति होती है।

पर्वों में उपवास फल

जो को अवि भव्वुल्लो, पव्वदिणेसुं कुणेदि उववासं।
सक्कदि सुहभावेहिं, कुव्वेदुं सल्लेहणं सो॥41॥

जो कोई भी भव्यजीव पर्व के दिनों में उपवास करता है वह शुभ-भावों से सल्लेखना करने में समर्थ होता है।

अट्ठमीइ खयदि विही, चउद्दसीए अजोगावत्थं च।
पावदि पंचमगदिं च, पंचमीए उववासेणं॥42॥

अष्टमी के दिन उपवास से कर्म नष्ट होते हैं, चतुर्दशी के दिन उपवास के जीव अयोगकेवली वा सिद्धावस्था को प्राप्त करता है एवं पंचमी के दिन उपवास से पंचमगति को प्राप्त करता है।

उपवास काल

कइवय-णिग्गंथजदी, पव्वदिणेसुं कुणंति उववासं।
रोहिणी-आइ-वदेसु, ते सया कम्मणिज्जराए॥43॥

कई निर्ग्रन्थ यति, पर्व के दिनों में उपवास करते हैं और कई मुनिराज कर्मनिर्जरा के लिए रोहिणी आदि व्रतों में भी उपवास करते हैं।

अनशन तप में प्रसिद्ध

गुणणिही जंबुसामी, उसहो वीरो बाली बाहुबली।
सुदंसण-अणंतबला, रामादी अणसणे खादा।।44।।

श्रीआदिनाथ जी, श्रीमहावीर स्वामी, श्रीबाहुबली, श्रीराम, श्रीजंबूस्वामी जी, गुणनिधि मुनिराज, बालि मुनिराज, सुदर्शन मुनिराज, अनंतबलादि मुनिराज अनशन तप में प्रसिद्ध हुए।

ऊनोदर तप

विदिय-तव-ऊणोदरो, अहियमाहप्पं अणसणादो अवि।
कंखं णिरुंभिदु-मप्प-विसुद्धीइ णिज्जराइ खमो।।45।।

दूसरा तप ऊनोदर तप है। यह अनशनतप से भी अधिक माहात्म्य वाला है। यह ऊनोदर तप इच्छाओं के निरोध, आत्मा की विशुद्धि व कर्मों की निर्जरा में समर्थ है।

ऊनोदरतप भेद व स्वरूप

तिविह-ऊणोदर-तवो, उत्तम-मज्झिम-जहण्ण-भेयादो।
भासिदो गणहरेहिं, उदर-ऊणत्त-विअप्पादो।।46।।

उदर की न्यूनता के विकल्प से उत्तम, मध्यम और जघन्य के भेद से ऊनोदर तप गणधरों के द्वारा तीन प्रकार का कहा गया है।

तंडुलिगमेत्त-गहणं, वरो कवलेगूणमेत्तगहणं च।
उयरादो दु जहण्णो, मज्झे असंखभेया जाण।।47।।

एक चावल मात्र ग्रहण करना उत्कृष्ट ऊनोदर है, भूख से मात्र एक ग्रास कम ग्रहण करना जघन्य ऊनोदर है और मध्य में असंख्यात भेद जानने चाहिए।

ऊनोदरतप फल

होदि ऊणोदरेणं, अविवागी णिज्जरा णिग्गंथाण।
संवर-तच्चं लहिय वि, सिद्धा हविदुं सक्का तदा।।48।।

ऊनोदर तप से निर्ग्रन्थ मुनिराजों की अविपाकी निर्जरा होती है। वे संवर तत्त्व को प्राप्तकर तब उसी भव में सिद्ध होने में भी समर्थ होते हैं।

ऊनोदरतप में प्रसिद्ध

सुद्धोधणस्स पुत्तो, सिद्धत्थो णिग्गंथ-अवत्थाए।
कुव्वीअ ऊणोदरं, छ-वासंतं गोदम-बुद्धो।।49।।

राजा शुद्धोधन के पुत्र सिद्धार्थ वा गौतम बुद्ध ने निर्ग्रन्थ अवस्था में छः वर्ष तक ऊनोदर तप किया।

कवलचंदायणाइं बहुविह-वद मप्पभोयणेण जेहि।
करिदं ते णिग्गंथा, पसिद्धा ऊणोदर-तवम्मि।।50।।

जिन्होंने अल्पाहार से कवलचंद्रायण आदि बहुत प्रकार के व्रतों को किया वे सभी निर्ग्रन्थ मुनिराज ऊनोदर तप में प्रसिद्ध हुए।

जगपूज्य तपस्वी

अब्भावगास - आदावण - पडिमाइ - जोगधारगा जे दु।
कवलमेगं गहंता, जगपुज्जा समण-तवसी ते।।51।।

जो एक ग्रास मात्र ग्रहण करते हुए अभ्रावकाश, आतापन, प्रतिमादियोग धारण करते हैं वे सभी तपस्वी श्रमण जगपूज्य हैं।

वृत्तिपरिसंख्यान तप

जो कुणदि वित्तिं कडुअ, दव्व-खेत्त-यालाइ-मज्जादं च।
आहारं गहिदुं सो, वित्तिपरिसंखाण-जुत्तो य॥52॥

जो आहार ग्रहण करने के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि की मर्यादा करके वृत्ति करते हैं, वे मुनिराज वृत्तिपरिसंख्यान तप से युक्त हैं।

द्रव्यापेक्षया वृत्ति

एग - बे - ते - चदु - पंच - आइ - वत्थुमेत्तगहण-माहारे।
दायगाइ-संखाणं, दव्वावेक्खा-वित्ती जाण॥53॥

आहार में एक, दो, तीन, चार या पाँच आदि वस्तु मात्र ग्रहण करना या दाताओं की संख्या करना द्रव्य की अपेक्षा वृत्ति जाननी चाहिए। अर्थात् आज आहार में ये एक अमुक वस्तु या दो आदि वस्तु ही लूँगा अथवा दो, तीन, चार आदि दाता पड़गाहन करेंगे तो आहार ग्रहण करूँगा इत्यादि द्रव्य की अपेक्षा वृत्ति है।

क्षेत्रापेक्षया वृत्ति

वीहि-रच्छा गाम-पुर-पट्टण-रज्ज-दोण-संवाहादी।
संखाइत्तु आहार-गहणं खेत्तवेक्खा-वित्ती॥54॥

गली, मौहल्ला, गाँव, नगर, पत्तन, राज्य, द्रोण व संवाहनादि की संख्या (वृत्ति) करके आहार ग्रहण करना क्षेत्र की अपेक्षा वृत्ति है। अर्थात् अमुक गली, मौहल्ला, गाँवादि में कोई पड़गाहन कर शुद्ध आहार देगा तो ग्रहण करूँगा अन्यथा नहीं, इस प्रकार की वृत्ति क्षेत्र की अपेक्षा वृत्ति कही जाती है।

कालापेक्षया वृत्ति

छ-आइ-घडिगंतरम्मि, करिस्सेदि पडिग्गहं तो हि गहमि।
आहार-मित्थं वित्ति-करणं कालवेक्खावित्ती॥55॥

छः आदि घड़ी के अंदर-अंदर कोई मेरा पड़गाहन करेगा तो ही मैं आहार ग्रहण करूँगा, इस प्रकार (विचारकर) वृत्ति करना काल की अपेक्षा वृत्ति है।

वृत्तिपरिसंख्यान व्रत में प्रसिद्ध

अस्सिं तवे पसिद्धा, आदी वीरो य पउमो भीमो दु।
चंदगुत्तो मुणिवरो, बलरामो आइ-णिग्गंथा॥56॥

श्रीआदिनाथ जी, श्रीमहावीर जी, मुनिराज श्रीपद्म, भीम, श्रीचंद्रगुप्त मुनिराज एवं बलराम आदि निर्ग्रंथ मुनिराज इस वृत्ति परिसंख्यान तप में प्रसिद्ध हुए।

रसपरित्याग व्रत

गुड-तिल्ल-घिद-दहि-दुद्ध-पणरसाण वा लवणजुद-छ-रसाण।
सत्तीए उज्झणं च, रसपरिचागतवो णेयो दु॥57॥

गुड़, तेल, घी, दही, दूध इन पाँच रस अथवा नमक मिलाकर इन छः रसों का शक्तिपूर्वक त्याग करना, रसपरित्याग तप जानना चाहिए।

महुर-तित्त-कडु-कसाय-अंबाणि तहा पणविहाणि रसाणि।
एयादि-रसचागणं, सत्तीइ रसपरिचागतवो॥58॥

मीठा, चरपरा, कड़वा, कसायला व खट्टा, ये भी पाँच प्रकार के रस हैं। एक आदि रस का शक्तिपूर्वक त्याग करना रसपरित्याग तप है।

रसत्याग तप से इंद्रियजय

रसणिंदिय-जयस्स चिय, सत्तीइ पगासणा रस-चागेण।
इंदियजयप्पगुणस्स रिउजयेण पुरवित्थारोव्व॥59॥

रसत्यागतप से रसनेन्द्रियजय की शक्ति का और इंद्रियजय रूप आत्मगुण का प्रकटीकरण उसी प्रकार होता है जैसे शत्रुओं को जीतने से नगर का विस्तार होता है।

रसत्याग से शुद्धात्मरस की प्राप्ति

महातवस्सी जोगी, इड्ढिधारगा समणा पावंते।
अज्झप्प-झाणबलेण, सुद्धप्परसं रस-मुज्झित्तु॥60॥

महातपस्वी योगी, ऋद्धिधारक-श्रमण रस का त्याग कर अध्यात्मध्यान के बल से शुद्धात्मरस को प्राप्त करते हैं।

विविक्त-शैय्यासन तप

जो को वि समत्तेणं, सहदि आसणाइ-जणिद-वउकट्ठं।
अप्पसुद्धीए दु सो, विवित्तसेज्जासणतवजुदो॥61॥

जो कोई भी श्रमण आत्मविशुद्धिपूर्वक समत्वभाव से आसनादि जनित शरीर के कष्ट को सहन करता है वह विविक्त-शैय्यासन तप से युक्त है।

आसन भेद

पउमं वीरं वज्जं, बंभं सिद्धं वक्कं गोमुहं च।
भद्द - काओसग्ग - सीहाइ - चउसीदि-आसणाइं॥62॥

पद्मासन, वीरासन, वज्रासन, ब्रह्मासन, सिद्धासन, वक्रासन, गोमुखासन, भद्रासन, कायोत्सर्ग आसन, सिंहासनादि चौरासी आसन कहे गए हैं।

आसन-विजय

जहाजोग्गासणेणं, सगप्पविसुद्धिं वड्ढंतो कुणदि।
णिज्जणम्मि सुहझाणं, णिरीहवित्तीइ सय साहू॥63॥

साधु निरीहवृत्ति से निजात्मा की विशुद्धि को वृद्धिंगत करते हुए एकांत में यथायोग्य आसन लगाकर शुभ ध्यान करते हैं।

कायक्लेश तप

उण्हसीदबाहाए, जलविट्ठि - चवलाजुदपवणेहि वा।
रोय-पहुदि-जणिद-कट्ठ-सहणं दु कायकिलेसतवो॥64॥

ऊष्ण-शीतादि की बाधा, जलवृष्टि, चमकती बिजली के साथ चलने वाली हवा और रोगादि से उत्पन्न कष्ट को सहन करना कायक्लेश तप है।

कायक्लेश तप में प्रसिद्ध

पणिग-चिलादि-सुदंसण-चाणक्क-विण्हुकुमार-सुग्गीवा।
अद्दिकुमारो मयो य, सयलभूसणो गयकुमारो॥65॥
सुपस्स - पस्स - वीरा य, बाहुबली गुरुदत्त - धम्मघोसो।
सुकुमालो सुकउसलो, देस-कुल-भूसणाइ-खादा॥66॥
(जुम्मं)

पणिक, चिलाति, सुदर्शन, चाणक्य, विष्णुकुमार सुग्रीव, अद्रिकुमार, श्री मय, सकलभूषण, गजकुमार, श्रीसुपार्श्वनाथ, श्रीपार्श्वनाथ, श्रीमहावीर, बाहुबली, गुरुदत्त मुनि, धर्मघोष मुनि, सुकुमाल मुनि, सुकौशल मुनिराज, देशभूषण-कुलभूषण मुनिराज इस तप में प्रसिद्ध हुए।

अंतरंग तप व भेद

अंतवियारं समिदुं, अंतरतवं करिदुं खमो जो सो।
अंतरप्पा संजमी, मिच्छाइट्ठी सक्को णेव॥67॥

जो अंतरंग तप को करने में समर्थ है वही अंतरात्मा संयमी अंतर विकार को शमन करने में समर्थ है जबकि मिथ्यादृष्टि जीव अंतरंग के विकार को शमित करने में समर्थ नहीं होता।

पायच्छित्तं विणओ वेज्जावच्चं सज्झाओ कमसो।
काउस्सग्गो झाणं, छव्विहंततवो सिव-हेदू॥68॥

प्रायश्चित्त, विनय, वैय्यावृत्ति, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग और ध्यान क्रमश छ. प्रकार के अंतरंग तप हैं जो मोक्ष का हेतु हैं।

कषाय शमनकारक अंतरंग तप

समंति अंतरतवेण, कोह-माण-माया-लोह-मोहा य।
असुहादु णिवत्तीए, समत्थो सव्वदा तवस्सी॥69॥

अंतरंग तप से क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह शमित होते हैं। तपस्वी अशुभ से निवृत्ति के लिए सदा समर्थ होता है।

शुभध्यानादि का आधार-अंतरंग तप

वेरग्गविड्ढीए य, अप्पसत्तीइ सम्मत्त-थिरिमाइ।
अंतरतव-आहारो, संजमसुइस्स सुहझाणस्स॥70॥

वैराग्य की वृद्धि, आत्मा की शक्ति, सम्यक्त्व की स्थिरता, संयम की पवित्रता और शुभ ध्यान के लिए अंतरंग तप आधार है।

प्रायश्चित्त तप व भेद

सम्मत्त-जम-वदेसुं, अण्णाण-पमाद-कसायेहिं चिय।
चित्त-विसुद्धि-णासगा, संकिलेस-भाव-रूवा तह॥71॥

उप्पण्ण-सव्व-दोसा, पक्खालेदुं च चित्तसुद्धीए।
अदिक्कमादि-चदुविहं, पायच्छित्तं परम-हेदू॥72॥ (जुम्मं)

अज्ञान, प्रमाद व कषाय से सम्यक्त्व, संयम व व्रतों में चित की विशुद्धि का नाश करने वाले, संक्लेश भाव रूप दोष उत्पन्न होते हैं। उन सभी दोषों के प्रक्षालन और चित्त की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त प्रधान कारण है। वह प्रायश्चित्त अतिक्रम आदि चार प्रकार का है।

सूरी पायच्छित्तं, देदि सिस्साणं चित्तसुद्धीए।
दोसणुसारेण ताण, दहविहं करुणाबुद्धीए॥73॥

आचार्य भगवन् शिष्यों के दोषों के अनुसार उनके चित्त की शुद्धि के लिए करुणाबुद्धिपूर्वक उन्हें प्रायश्चित्त देते हैं।

आलोयण-पडिक्कमण-तदुहय-विवेग-विओसग्ग-तवाणि।
छेदपरिहारुवट्ठावण - सद्धाणाणि दसविहाणि॥74॥

वह प्रायश्चित्त दस प्रकार का है—आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार, उपस्थापना और श्रद्धान।

दोष त्याग प्रायश्चित्त पालन

आकंपिद-अणुमाणिद-दिट्ठ-सुहुम-थूल-छण्ण -तस्सेवी।
सद्दाउलयं बहुजण - मव्वत्त - मालोयण - दोसा॥75॥
उज्झिय दहविहदोसा, सिस्सा पालेज्जा पायच्छित्तं।
विणयेणप्पसुद्धीइ, तेण विणा अप्पसुद्धी णो॥76॥

आकंपित, अनुमानित, दृष्ट, सूक्ष्म, स्थूल, छन्न, तत्सेवा, शब्दाकुलित, बहुजन और अव्यक्त, ये आलोचना के दोष हैं। इन दस प्रकार के दोषों का त्याग कर शिष्यों को विनयपूर्वक आत्मशुद्धि के लिए प्रायश्चित्त का पालन करना चाहिए इस प्रायश्चित तप के बिना आत्मा की शुद्धि नहीं हो सकती।

प्रायश्चित्त से चित्त शुद्धि

जलेण पंकं व खार-वत्थु-संजोगेणं वत्थाइं व।
जिणत्थुदीइ वाणीव, भस्स-घसणेणं भायणं व॥77॥
पिचुमंदेण रत्तं व, अग्गिणा हेमं व होज्जा सुद्धं।
दंतं व मंजणेणं, चित्तं सय पायच्छित्तेण॥78॥ (जुम्मं)

जिस प्रकार जल से कीचड़, जल में क्षारीय वस्तु के संयोग से वस्त्र, जिनेंद्रप्रभु की स्तुति से वाणी, भस्म के घिसने से बर्तन, नीम से रक्त, अग्नि से सोना और मंजन से दाँत शुद्ध हो जाते हैं उसी प्रकार प्रायश्चित्त से सदा चित्त शुद्ध हो जाता है।

उहयतवेहिं अप्पा, जह सुज्झेदि तह णिव्वाणकंखी।
सिस्सो सुगुरुकिवाए, विणयगहिद-पायच्छित्तेण॥79॥

जिस प्रकार निर्वाण का आकांक्षी दोनों प्रकार के तपों से आत्मा की शुद्धि करता है उसी प्रकार गुरु कृपा से विनय द्वारा ग्रहण किए गए प्रायश्चित्त से शिष्य शुद्ध होता है।

विनय तप

सम्मत्ताइ-गुणेसुं, ताणं धारग-साहूसुं णिच्चं।
धम्मे धम्मफलेसुं, विणयभावो विणयो तवो दु॥80॥

सम्यक्त्वादि गुणों में, उन गुणों के धारक साधुओं में, धर्म व धर्म के फलों में नित्य ही विनय भाव रखना विनय नामक तप है।

विनय माहात्म्य

विणयो गुणागरिसगो, दोस-विगरिसगो पुण्ण-णिमित्तं च।
सग्ग-पहुदि-सोवाणं, सासय-मोक्ख-दारं विणओ॥81॥

विनय गुणों को आकर्षित करने वाला, दोषों का विकर्षण करने वाला, पुण्य का निमित्त, स्वर्ग आदि का सोपान और शाश्वत मोक्ष का द्वार है।

विणयो दु महाधम्मो, बंधणिमित्तं तित्थयरपइडीइ।
सिस्साणं पाणोव्व दु, तवेसुं चेयणा व्व विणयो॥82॥

विनय महाधर्म है। तीर्थंकर प्रकृति के बंध का निमित्त है। विनय शिष्यों के लिए प्राण व तपों में चेतना के समान है।

विनय के भेद

दंसण-णाण-चरिय-तव-उवयार-भेयादु पणहा विणयो।
तवसीहि पालिदव्वो, विणयधम्मो सगसत्तीए॥83॥

दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप व उपचार के भेद से विनय पाँच प्रकार की जाननी चाहिए। तपस्वियों को अपनी शक्ति के अनुसार विनय धर्म का पालन करना चाहिए।

वैय्यावृत्ति तप

संजमविड्ढीइ खेद-सम-किलंताणं सय परिहारस्स।
महापीदीइ मुणीण, अणुवज्जणं वेज्जावच्चं॥84॥

मुनियों की संयम की वृद्धि, खेद, श्रम व क्लांत के परिहार के लिए महाप्रीतिपूर्वक उनकी सेवा-सुश्रूषा करना वैय्यावृत्ति है।

भावी तीर्थंकर कौन?

जो सो सम्मत्तस्स दु, णिस्संकिद-पहुदि-अट्ठंग-जुत्तो।
विवेगी गुरुसेवगो, जिणभत्तो महासहिण्हू य॥85॥
पसमाइ-गुण-संजुदो, मुणिधम्म-संठावगो कोसलेण।
पीदीइ वेज्जावच्च-कत्ता हु भावी तित्थयरो॥86॥(जुम्मं)

सम्यक्त्व के निःशंकित आदि आठ अंगों से युक्त, विवेकी, गुरु का सेवक, जिनेन्द्रप्रभु का भक्त, महासहिष्णु, प्रशमादि गुणों से युक्त, मुनिधर्म का संस्थापक और प्रीतिपूर्वक कुशलता से वैयावृत्ति करने वाला भावी तीर्थंकर होता है।

जिनशासन स्तंभ-वैय्यावृत्ति

वेज्जावच्चेण विणा जिणसासणट्ठिदी संभवो णेव।
जीविदो समण-सावय-धम्मो अस्स आहारेणं॥87॥

वैय्यावृति के बिना जिनशासन की स्थिति संभव नहीं है। इसके आधार से ही श्रमण व श्रावक धर्म जीवंत है।

वैय्यावृत्ति कैसे?

आहारोसहिवसदी, संजम-सउच-णाण-उवयरणाइं।
समणादीण वि दायिय, करेज्ज सया वेज्जावच्चं॥88॥

श्रमणादिकों के लिए आहार, औषधि, वसतिका अथवा संयमोपकरण, शौचोपकरण व ज्ञानोपकरण देकर सदा वैय्यावृत्ति करनी चाहिए।

वैय्यावृत्ति की महत्ता

सिसूणं मादु-पयं व, महच्चं सिप्पीइ सादि-बिंदू व।
बीआण वर-भूमीव, वेज्जावच्च-मुहय-धम्माण॥89॥

श्रमण व श्रावक दोनों धर्मों के लिए वैय्यावृत्ति वैसे ही महत्वपूर्ण है जैसे शिशुओं के लिए माँ का दुग्ध, सीप के लिए स्वाति की बूंद और बीजों के लिए उत्तम भूमि महत्वपूर्ण होती है।

इक्खुस्स महुरिमा चिय, पुप्फाण गंधो णाणं विदूणं।
संजमो पंडिदाणं, भयवदाणं सव्वण्हुत्तं॥90॥

णीरस्स सीयलत्तं, रयणत्तयं च मुणीणं पाणोव्व।
जह तह वेज्जावच्चं, सावय-समण-धम्मस्स सया॥91॥(जुम्मं)

जैसे गन्ने के लिए मधुरता, पुष्पों के लिए गंध, विद्वानों के लिए ज्ञान, पंडितों के लिए संयम, भगवान् के लिए सर्वज्ञता, नीर के लिए शीतलता और मुनियों के लिए रत्नत्रय प्राण के समान है उसी प्रकार श्रावक व श्रमण धर्म के लिए वैय्यावृत्ति प्राण के समान है।

वैय्यावृत्ति फल

जिणण्णा-पालणं खलु, णिद्दोस-रयणत्तयस्स दाणं च।
तित्थाविच्छित्ती वर-समाही संजदाण विड्ढी॥92॥

सड्ढा-वच्छल्ल-भत्ति-तव-वत्त-णाण-झाणाणि वड्ढेदि।
वेज्जावच्चेण धम्म-पहावणायार-पालणं च॥93॥ (जुम्मं)

वैय्यावृत्ति करने से जिनाज्ञा का पालन, निर्दोष रत्नत्रय का दान देना, तीर्थ की अव्युच्छित्ती अर्थात् अविच्छिन्न तीर्थ प्रवर्तन, उत्तम समाधि, संयतों की वृद्धि होती है। वैय्यावृत्ति से श्रद्धा, वात्सल्य, भक्ति, तप, आरोग्य, ज्ञान व ध्यान वृद्धिंगत होता है, धर्म की प्रभावना और आचार का पालन होता है।

वैय्यावृत्ति न करने से हानि

आयारत्त-लोवो य, आगमचागो धम्मणासो तहा।
वेज्जावच्चेण विणा, जिणिंदण्णा-उल्लंघणं च॥94॥

वैय्यावृति के बिना आचारत्व का लोप, आगम का परित्याग, धर्म का नाश एवं जिनेंद्र प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन होता है।

स्वाध्याय तप

जिणवयणाणं पढणं, सुणणं चिंतणं कंठगदकरणं।
पुच्छणं च उवदिसणं, अंतरतवो चिय सज्झाओ॥95॥

जिनवचनों का पढ़ना, सुनना, चिंतन करना, याद करना, कुछ समझ न आने पर पूछना और उपदेश देना, यह स्वाध्याय नामक अंतरंग तप है।

वाचना

पढमाइ-अणुजोगाण, सुद्धुच्चारणं अइविणयेणं च।
पसंगणुसारेण चिय, वायणा समुइदत्थ-गहणं॥96॥

प्रथमानुयोग आदि अनुयोगों का अतिविनयपूर्वक शुद्ध उच्चारण करना एवं प्रसंगानुसार समुचित अर्थ ग्रहण करना वाचना है।

पृच्छना

सुद्धवायणं किच्चा, णादुं गूढत्थं जिण्णासाए।
बहुसुदवंतेहि समाहाण-गहणं पुच्छणा जाण॥97॥

शुद्ध वाचना करके जिज्ञासापूर्वक पदार्थ को जानने के लिए बहुश्रुतवंतों से समाधान ग्रहण करना पृच्छना स्वाध्याय जानना चाहिए।

अनुप्रेक्षा

तच्चचिंतणविसयस्स, पढिद-सुणिद समाहिद-जिणवयणाण।
पसंत-विमल-भावेहि, पुण पुण चिंतणं अणुवेक्खा॥98॥

तत्त्वचिंतन के विषय का, पढ़े-सुने वा समधित जिनवचन का प्रशांत व निर्मल भावों से पुनः पुनः चिंतन करना अनुप्रेक्षा स्वाध्याय है।

अणुवेक्खा-सरिसो णो, अण्ण-सज्झाओ मण्णदे समये।
तं दु अंतर-तवो सो, अण्ण-तवो णो सज्झाओव्व॥99॥

अनुप्रेक्षा स्वाध्याय के समान जिनशासन में अन्य कोई स्वाध्याय नहीं माना जाता। इसलिए वह अनुप्रेक्षा स्वाध्याय अंतरंग तप है। स्वाध्याय के समान अन्य कोई तप नहीं है।

आम्नाय

पढिद-सुणिद-समाहिदणु-चिंतिद-विसुद्धिकारग वाणीए।
पुण पुण सिमरण-महवा, कंठगद-करणं आम्णायो॥100॥

पढ़े, सुने, समाधित, अनुचिंतित, विशुद्धि-कारक वाणी का पुनः पुनः स्मरण करना या कंठस्थ करना आम्नाय स्वाध्याय है।

धर्मोपदेश

अरिहाइ-परमेट्ठीण, जिणवयणायण्णणं च सड्ढाए।
जिणवयण-सीसणं वा, धम्मुवएसो सज्झाओ दु॥101॥

अरिहंतादि परमेष्ठियों वा जिनवचनों का श्रद्धा पूर्वक सुनना और जिनवचनों का कहना धर्मोपदेश नामक स्वाध्याय है।

कायोत्सर्ग तप

सव्वसंग-मुज्झित्ता, आमुयिय देहादु ममत्तभावं।
काउस्सग्गो णेयो, परिलीणं तच्चचिंतणम्मि॥102॥

सर्व परिग्रह का त्यागकर और देह से भी ममत्व भाव को छोड़कर तत्वचिंतन में लीन होना कायोत्सर्ग जानना चाहिए।

कायोत्सर्ग के भेद

उट्ठिदुट्ठिदो उट्ठिद-णिविट्ठो तह उवविट्ठ-उट्ठिदो य।
उवविट्ठ-णिविट्ठो चिय, चदुहा काउस्सग्गो जाण॥103॥

उत्थिष्ट-उत्थिष्ट, उत्थिष्ट-निविष्ट, उपविष्ट-उत्थिष्ट, उपविष्ट-निविष्ट, इस प्रकार कायोत्सर्ग चार प्रकार का जानना चाहिए।

ध्यान का बीज-कायोत्सर्ग

काउस्सग्गो बीअं, धम्मसुक्क-झाणाणप्पणुभवस्स।
काउसग्गे असक्का, कहं पावंति सुहज्झाणं॥104॥

धर्म व शुक्लध्यान एवं आत्मानुभव के लिए कायोत्सर्ग बीज रूप है। कायोत्सर्ग में असमर्थ शुभध्यान को कैसे प्राप्त कर सकते हैं? अर्थात् नहीं कर सकते।

ध्यान तप

सव्वपहाणभूदाणि, सुहज्झाणाणि अंतरतवेसुं हु।
जिणचेइयालयम्मि दु, कलस-धयासंजुद-सिहरोव्व॥105॥

अंतरंग रूपों में शुभध्यान उसी प्रकार सर्व प्रधानभूत है जिस प्रकार जिनचैत्यालय में कलश व ध्वजा से युक्त शिखर।

सज्झाणेण विणा णो, मोहस्स उहट्टदि एग-पइडी वि।
रयणाण ववसायोव्व, सुहझाणाणि णेयाणि सया॥106॥

सद्ध्यान के बिना मोह की एक प्रकृति भी नष्ट नहीं हो सकती। शुभध्यान को सदैव रत्नों के व्यापार के समान जानना चाहिए। अर्थात् एक रत्न का विक्रय भी व्यक्ति को जिस प्रकार अधिक लाभ देने वाला होता है उसी प्रकार कुछ क्षण का शुभ ध्यान भी अधिक कर्मों की निर्जरा में समर्थ होता है।

अंतरंग तप में प्रसिद्ध

इंदभूदि - सिवभूदी, भामंडलो वरंगो - जिणदत्तो।
सुदंसण-सुदसायरा, बाल-महाबाल-पसिद्धा य॥107॥

इंद्रभूति, शिवभूति, भामंडल, वरांग, जिनदत्त, सुदर्शन, श्रुतसागर, बाल व महाबाल विनय तप में प्रसिद्ध हुए।

ग्रंथपठन-फल

जो को वि भव्व-जीवो, तवसारं पढदि सुणदि सड्ढाए।
कुणदि तवं सत्तीए, भव-सिव-सोक्खं पावदे सो॥108॥

जो कोई भी भव्यजीव 'तपसार' नामक ग्रंथ को श्रद्धापूर्वक पढ़ता व सुनता है एवं शक्ति के अनुसार तप करता है वह संसार सुख व पुनः मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

अंतिम मंगलाचरण

अरिहादी णवदेवा, संति-पाय-सिंधु-जयकित्तिसूरी।
देसभूसणं वंदे, मम गुरु-विज्जाणंद-सूरिं॥109॥

अरिहंतादि नवदेवों (अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य व जिनचैत्यालय), चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी, महातपस्वी आचार्य की पायसागर जी, अध्यात्मयोगी आचार्य श्री जयकीर्ति जी, भारतगौरव आचार्य श्री देशभूषण जी एवं मेरे गुरुदेव सिद्धांतचक्रवर्ती, राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज की मैं वंदना करता हूँ।

प्रशस्ति

विसय-कसायं हरिदुं, सयलकम्मं खयिदुं सुहभावेहि।
लहुबुद्धीए लिहिदो, गुरुकिवाइ तवसारो इमो॥110॥

विषय-कषायों के हनन व सकलकर्मों के क्षय के लिए शुभभावपूर्वक लघुबुद्धि से, गुरु के प्रासाद से यह 'तवसारो'-तपसार नामक ग्रंथ लिखा गया।

पदत्थ-गदि-गुरु-केवलि-वीरद्धे य वीरजम्मदिवसम्मि।
जयपुर-रायट्ठाणे, पुण्णो सोहंतु सुदवंता॥111॥

पदार्थ (9) गति (4) गुरु (5) केवली (2) (सयोग व अयोग) **'अंकानां वामतो गतिः'** से 2549 वी.नि.सं. में जयपुर राजस्थान में यह ग्रंथ पूर्ण हुआ। ग्रंथ में यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो श्रुत को जानने वाले महान् श्रुतवंत इसे संशोधित करें।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108

वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

प्राकृत साहित्य			
1.	णंदिणंदसुत्तं (नंदीनंद सूत्र)	2.	अज्जसक्किदी (आर्य संस्कृति)
3.	रट्ठ-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)	4.	णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)
5.	जदि-किदिकम्मं (यति कृतिकर्म)	6.	धम्मसुत्तं (धर्म सूत्र)
7.	अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)	8.	जिणवरथोत्तं (जिनवर स्तोत्र)
9.	तच्च-सारो (तत्त्व सार)	10.	विज्जावसु-सावयायारो (विद्यावसु श्रावकाचार)
11.	अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)	12.	सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)
13.	रयणकंडो (प्राकृत सूक्ति कोश)	14.	मंगलसुत्तं (मंगलसूत्र)
15.	अट्ठंगजोगो (अष्टांग योग)	16.	णमोयार-महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)
17.	विस्सपुज्जो दियंबरो (विश्वपूज्य दिगंबर)	18.	अप्प-विहवो (आत्म वैभव)
19.	मूलवण्णो (मूलवर्ण)	20.	विस्सधम्मो (विश्व धर्म)
21.	अप्पणिब्भर-भारदं (आत्मनिर्भर भारत)	22.	समवसरण-सोहा (समवसरण शोभा)
23.	पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)	24.	को विवेगी (विवेकी कौन)
25.	तित्थयर-णामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति)	26.	कलाविण्णाणं (कला विज्ञान)
27.	अप्पसत्ती (आत्म-शक्ति)	28.	वयणपमाणत्तं (वचनप्रमाणत्व)
29.	सिरिसीयलणाहचरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)	30.	अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)
31.	असोग रोहिणी चरियं, अशोक रोहिणी चरित्र	32.	खवगराय-सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)
33.	लोगुत्तर-वित्ती (लोकोत्तर वृत्ति)	34.	पसमभावो (प्रशम भाव)
35.	समणभावो (श्रमण भाव)	36.	इड्ढिसारो (ऋद्धिसार)
37.	झाणसारो (ध्यान सार)	38.	समणायारो (श्रमणाचार)
39.	सम्मेदसिहरमाहप्पं, सम्मेद शिखर माहात्म्य	40.	जिणवयण-सारो (जिनवचन सार)
41.	अम्हाण आयवत्तो (हमारा आर्यावर्त)	42.	विणयसारो (विनय सार)
43.	भत्तिगुच्छो (भक्ति गुच्छ)	44.	तव-सारो (तपसार)
45.	भाव-सारो (भावसार)	46.	दाण-सारो (दानसार)
47.	लेस्सा-सारो (लेश्या सार)	48.	वेरग्ग-सारो (वैराग्य सार)
49.	णाण-सारो (ज्ञानसार)	50.	णीदि-सारो (नीति सार)
51.	धम्म-सुत्ति-संगहो (धर्म सूक्ति संग्रह)	52.	कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)
53.	प्राकृत वाणी भाग-1-2-3-4		

टीका ग्रंथ

1.	प्रमेया टीका-रत्नमाला (संस्कृत)	2.	वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3.	नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति (हिंदी)	4.	श्रीनंदा टीका-सिद्धिप्रिय स्तोत्र

इंग्लिश साहित्य

1.	Inspirational Tales	2.	Meethe Pravachan Part-I

वाचना साहित्य

1.	मुक्ति का वाग्दान (इष्टोपदेश)	2.	बोधि वृक्ष (प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)
3.	शिवपथ का रथ (सामायिक पाठ)	4.	स्वात्मोपलब्धि (समाधि तंत्र)

प्रवचन साहित्य

1.	आईना मेरे देश का	2.	उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3.	उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)	4.	उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दु:खदानी)
5.	उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)	6.	उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7.	उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहिं जिनराज सीझे)	8.	उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9.	उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)	10.	उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दु:ख ही मानो)
11.	उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)	12.	खुशी के आँसू
13.	खोज क्यों रोज-रोज	14.	गुरुत्तं भाग 1
15.	गुरुत्तं भाग 2	16.	गुरुत्तं भाग 3
17.	गुरुत्तं भाग 4	18.	गुरुत्तं भाग 5
19.	गुरुत्तं भाग 6	20.	गुरुत्तं भाग 7
21.	गुरुत्तं भाग 8	22.	गुरुत्तं भाग 9 (सोलहकारण भावना)
23.	गुरुत्तं भाग 10	24.	गुरुत्तं भाग 11
25.	गुरुत्तं भाग 12	26.	गुरुत्तं भाग 13
27.	गुरुत्तं भाग 14	28.	गुरुत्तं भाग 15
29.	गुरुत्तं भाग 16	30.	गुरुत्तं भाग 17 (बारह भावना)
31.	चूको मत	32.	जय बजरंगबली
33.	जीवन का सहारा	34.	ठहरो! ऐसे चलो
35.	तैयारी जीत की	36.	दशामृत
37.	धर्म की महिमा	38.	ना मिटना बुरा है न पिटना

39.	नारी का धवल पक्ष	40.	शायद यही सच है
41.	श्रुत निर्झरी	42.	सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा
43.	सीप का मोती (महावीर जयंती)	44.	स्वाति की बूँद

हिंदी गद्य रचना

1.	अन्तर्यात्रा	2.	अच्छी बातें
3.	आज का निर्णय	4.	आ जाओ प्रकृति की गोद में
5.	आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान	6.	आहारदान
7.	एक हजार आठ	8.	कलम पट्टी बुद्धिका
9.	गागर में सागर	10.	गुरु कृपा
11.	गुरुवर तेरा साथ	12.	जिन सिद्धांत महोदधि
13.	डॉक्टरों से मुक्ति	14.	दान के अचिन्त्य प्रभाव
15.	धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)	16.	धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17.	निज अवलोकन	18.	वसु विचार
19.	वसुनन्दी उवाच	20.	मीठे प्रवचन (भाग 1)
21.	मीठे प्रवचन (भाग 2)	22.	मीठे प्रवचन (भाग 3)
23.	मीठे प्रवचन (भाग 4)	24.	मीठे प्रवचन (भाग 5)
25.	मीठे प्रवचन (भाग 6)	26.	रोहिणी व्रत कथा
27.	स्वप्न विचार	28.	सद्गुरु की सीख
29.	सफलता के सूत्र	30.	सर्वोदयी नैतिक धर्म
31.	संस्कारादित्य	32.	हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना

1.	अक्षरक्षरातीत	2.	कल्याणी
3.	चैन की जिंदगी	4.	ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5.	मुक्ति दूत के मुक्तक	6.	हाइकू
7.	हीरों का खजाना	8.	सुसंस्कार वाटिका

विधान रचना

1.	कल्याण मंदिर विधान	2.	कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3.	चौंसठऋद्धि विधान	4.	णमोकार महार्चना
5.	दु:खों से मुक्ति (वृहद् सहस्रनाम महार्चना)	6.	यागमंडल विधान
7.	समवसरण महार्चना	8.	श्री नंदीश्वर विधान
9.	श्री सम्मेदशिखर विधान	10.	श्री अजितनाथ विधान

11.	श्री संभवनाथ विधान	12.	श्री पद्मप्रभ विधान
13.	श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)	14.	श्री चंद्रप्रभ विधान
15.	श्री पुष्पदंत विधान	16.	श्री शांतिनाथ विधान
17.	श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान	18.	श्री नेमिनाथ विधान
19.	श्री महावीर विधान	20.	श्री जम्बूस्वामी विधान
21.	श्री भक्तामर विधान	22.	श्री सर्वतोभद्र महार्चना
23.	श्री पंचमेरू विधान	24.	लघु नंदीश्वर विधान
25.	श्री चौबीसी महार्चना	26.	अभिनव सिद्धचक्र महार्चना
	प्रथमानुयोग साहित्य		
1.	अमरसेन चरित्र (कविवर माणिक्कराज जी)	2.	आराधना कथा कोश (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
3.	करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)	4.	कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	गौतम स्वामी चरित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)	6.	चारूदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
7.	चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)	8.	चेलना चरित्र
9.	चंद्रप्रभ चरित्र	10.	चौबीसी पुराण
11.	जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)	12.	त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13.	देशभूषण कुलभूषण चरित्र	14.	धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15.	धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	16.	नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17.	नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)	18.	प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19.	पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)	20.	पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21.	पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)	22.	पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23.	भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)	24.	भद्रबाहु चरित्र
25.	मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	26.	महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27.	महापुराण (भाग 1-2)	28.	महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29.	मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)	30.	यशोधर चरित्र

31.	रामचरित्र (आ. श्री सोमदेव स्वामी)	32.	रोहिणी व्रत कथा
33.	व्रत कथा संग्रह	34.	वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35.	विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)	36.	वीर वर्धमान चरित्र
37.	श्रेणिक चरित्र	38.	श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39.	श्री जम्बूस्वामी चरित्र (श्री वीर कवि)	40.	शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41.	सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)	42.	सम्यक्त्व कौमुदी
43.	सती मनोरमा	44.	सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45.	सुरसुंदरी चरित्र	46.	सुलोचना चरित्र
47.	सुकुमाल चरित्र	48.	सुशीला उपन्यास
49.	सुदर्शन चरित्र (आ. श्री विद्यानंदी जी)	50.	सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
51.	हनुमान चरित्र	52.	क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य)

1.	आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)	2.	आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य)
3.	अध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)	4.	कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5.	कर्मप्रकृति (सिद्धांतचक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)	6.	गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7.	चार श्रावकाचार संग्रह	8.	जिनकल्पि सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9.	जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)	10.	जिन सहस्रनाम स्तोत्र
11.	तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)	12.	तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
13.	तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)	14.	तत्त्वज्ञान तरंगिणी (श्रीमद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15.	तच्च-वियारो सारो (सि. च. आ. श्री वसुनंदी जी)	16.	तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17.	धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)	18.	धम्म रसायण (आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी)
19.	ध्यान सूत्राणि (श्री माघनंदी सूरी)	20.	नीतिसारसमुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदीस्वामी)
21.	पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)	22.	प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमिचंद्राचार्य जी)
23.	पंचरत्न	24.	पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (आ. श्री अमृतचंद्रस्वामी जी)
25.	मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)	26.	भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी स्वामी जी)

27.	भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)	28.	मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्तिस्वामी जी)
29.	योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबाल चंद्र जी)	30.	योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री अमितगति जी)
31.	रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)	32.	वसुऋद्धि
*	रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी)	*	स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
*	पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)	*	इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
*	लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)	*	वैराग्यमणिमाला (आ. श्री विशालकीर्ति जी)
*	अर्हत् प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)	*	ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33.	सुभाषित रत्न संदोह (आ. श्री अमितगतिस्वामी जी)	34.	सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35.	समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)	36.	समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी)
37.	सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)	38.	विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय)

संपादित हिंदी साहित्य

1.	अरिष्ट निवारक त्रय विधान • नवग्रह विधान • वास्तु निवारण विधान • मृत्युंजय विधान (पं. आशाधर जी कृत)		
2.	श्री जिनसहस्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान		
3.	श्री जिनसहस्रनाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक		
4.	शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान • भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल) • शांतिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी) • सम्मेदशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)		
5.	कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)	6.	तत्त्वोपदेश (छहढाला) (पं. प्रवर दौलतराम जी)
7.	दिव्य लक्ष्य (संकलन- हिंदी पाठ, स्तुति आदि)	8.	धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
9.	प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)	10.	भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11.	विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)	12.	सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13.	संसार का अंत	14.	स्वास्थ्य बोधामृत
15.	पिच्छि-कमण्डलु (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)		

गुरु पद विनयांजली साहित्य			
1.	आचार्य श्री विद्यानंद जी की यम सल्लेखना (मुनि प्रज्ञानंद)	2.	अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
3.	पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)	4.	वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
5.	दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्व नंदनी, वर्चस्व नंदनी)	6.	स्मृति पटल से भाग-1 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)
7.	स्मृति पटल से भाग-2 (आ. श्री वर्धस्व नंदनी)	8.	अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
9.	गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)	10.	परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
11.	स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)	12.	स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
13.	हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)	14.	वसु सुबंधं (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद जी जैन)
15.	समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')		